सद्गुरु तत्व बोध
SADGURU TATV BODH

नई दिल्ली
अंक – 178

www.saikalpadhyatmsanstha.com

श्री साई शक : 38
सितम्बर – अक्टूबर – 2019

॥ ॐ श्री साईनाथाय नमः॥
॥ ॐ श्री सदगुरूनाथ दादाय नमः॥

उपसंहार

Publisher
Sri Saikalp Adhyatm Sanstha
"Sai Niketan"
New Delhi - 110025
Ph. : 26956561
E.mail : saikalp@gmail.com
dadab6@gmail.com

Patron
Anand Bapshet

Editorial
Vijay Kumar Varma
Jogesh Grover

Subscription
Inland
Yearly : Rs.250.00
Life time : Rs.1000.00

Overseas
Yearly : US$ 250.00
Life time : US$ 500.00

Printed By
Soni Printers
Cell : 09718657567

Published Every Month

©All rights reserved with Publisher

गुरूबंधु भगिनियों

श्री सद्गुरु साईनाथ महाराज के चरणों में अनन्य भक्तिभाव से प्रणाम! आपके अनंत कृपा आशीर्वाद का बोझ उठाने की शक्ति मुझ में नहीं है। प्रत्येक जन्म लेने वाले मानव को ईश्वर स्वरूप होना आवश्यक है और उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति प्रयास कर रहा है। लेकिन प्रयास ही साधन है या देवतादर्शन की आस या व्याकुलता यानी साधन है?यह सवाल अभी हल नहीं हुआ है। तो भी आज जीवन में प्राप्त सुख आपकी कृपा का फल है इसे हम कदापि न भूलें ऐसी आपके चरणों में प्रार्थना है।

संसार अनंत है और भगवान अनंत अवतार रुप में सर्वत्र व्याप्त है, लेकिन उनके दर्शन होना इतना आसान नहीं है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने आपकी ही वंचना कर रहा है, तो भी हमारे पुण्य श्रेष्ठ होने के कारण संतों के सत्संग का लाभ हो रहा है। आत्म उद्धार और आत्म उन्नति की खुलकर चर्चा वर्षों से सुन रहे हैं, किन्तु इन शब्दों का फिर भी क्या अर्थ है? सूर्य की और देखना जैसे कठिन है, उसी प्रकार आत्मा का दर्शन कठिन है, क्योंकि वह हूबहू साक्षात्कारी ईश्वरी अंश है। चंद्रमा स्वयं प्रकाशित नहीं है, सूर्य के प्रकाश से वह जैसा प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार आत्मा के प्रकाश से देह में चैतन्य आता है सूर्य प्रकाश का सदुपयोग हम करते हैं। हमेशा सूर्य को नहीं देखते रहते हैं, उसी प्रकार आत्मका के प्रकाश से देह में चैतन्य आता है सूर्य प्रकाश का सदुपयोग हम करते है। हमेशा सूर्य को नहीं देखते रहते हैं। उसी

प्रकार देह जो चैतन्यमय है, उसके सद्‌गुणों को चंदन जैसा सुगंधित होना चाहिए, केवल देह की राख करना ठीक नहीं है, ऐसा चिंतन यहीं आत्म उन्नति है।

जीवन के आरंभ में ही बोध और शोध लेना चाहिए। भगवान की शरण में किसी भी माध्यम से जा सकते है। वहां भक्ति श्रेष्ठ या ज्ञान श्रेष्ठ इसका विचार न कर अपनी भगवान के प्रति अपनी ही श्रद्धा श्रेष्ठ है यही एकमेव उत्तर मिलेगा। क्योंकि यद्यपि भक्ति या ज्ञान श्रेष्ठ है, तो भी हममें उनके प्रति प्रेम निर्माण होना चाहिए।

यही सच्चा ''साक्षात्कार'' है। भगवान के अस्तित्व का आभास होना यह अवस्था ही मूलतः एक आभास है। इस संसार में भगवान का अस्तित्व किसमें या कहां नहीं है, उसका अस्तित्व होकर भी हमें उसका अभाव लगता है, तो मूलतः जिसकी कार्ययोजना निराकार है, क्या वह हमारी इच्छा से साकार होगा?उसे साकार करना यह साधना का साध्य नहीं है। जो निराकार है लेकिन जिसकी लीला अगाध है, उस पर श्रद्धा रखना साध्य करना चाहिए और उसके लिए ही साधना है। ईश्वर का अस्तित्व न महसूस होना इसमें ही अपनी प्रगति है क्योंकि जब हम इष्ट अपेक्षापूर्ति के लिए प्रयास करते है, तब इष्ट फलप्राप्ति होने के बाद प्रयास बंद हो जाते हैं। प्राप्त जीवन में अगर कदाचित् ऐसी प्राप्ति हुई है तो भावी जन्म की पूर्णता करने के प्रयत्न बंद हो जाते हैं। यह माया बंधन की ''माया'' है। इसका अन्त होना असंभव है। जिस प्रकार क्षितिज दिखाई देता है, उसके परिसार का विचार कर आसपास जो उपलब्ध है उसका लाभ लेने के लिए दृष्टि स्थिर करनी चाहिए। पानी की लहरों से नाव हिलने पर हम नहीं हिलते उसी प्रकार जीवन में जो सुख दुख की लहरें देह को हिलाती है, उस समय भगवान के बारे में विचार हिलने नहीं चाहिए। भगवान प्राप्त जीवन को तारने वाला चप्पू (पतवार) है अगर वहीं हाथ से छूटा तो हमारी यह जीवन नैय्या किस तरह पार लगेगी। हमारे पास दूध है, इसका मतलब मक्खन भी है, यह सोचना गतल है। दूध को जामन लगाए बिना मक्खन कैसे मिलेगा? उसी प्रकार प्राप्त जीवन में भक्ति का जामन ऐहिक जीवन को लगाए बगैर पारमार्थिक जीवन का लाभ नहीं होगा।

इस प्रकार भक्ति की भूख लगने पर ही साधना की मिठास अनुभव होती है। सामने पड़े पदार्थों को खाने की इच्छा की लालसा है, लेकिन पदार्थ सामने न होते हुए जो भूख लगती है वह निभाने से देह को भाति है। यह देहधर्म सर्व परिचित है। भगवान को देखते ही भक्ति की भूख लगती है, वह लालसा है, भगवान के प्रति शुद्ध भाव नहीं। तो आपके साध्य–असाध्य साधनों से आप इस भक्ति को आत्मसात करने का प्रयास करेंगे और अगर यदाकदा उसमें आप असफल हुए तो जन्म बंधन को पार करने का सामर्थ्य किस तरह प्राप्त होगा? इसलिए जिस तरह मिलाहार लाभदायक होता है? उसी प्रकार अल्प मात्रा में ही सही किन्तु नित्य से थोड़ी सी भक्ति कर वह आत्मसात करने का साधन प्रापत करना चाहिए। इसी को ही ''कृपा आशीर्वाद'' कह सकते है। जो हमारी आवश्यकताऐं है? उनकी प्राप्ति ईश्वर के लिए आसान लीला है, तो भी वह कृपा नहीं कहलायेगी, क्योंकि कृपापात्र होने पर कुछ मांगना शेष ही नहीं करता। जब तक भगवान से कुछ मांगे ऐसी इच्छा हममें है उसका अर्थ स्पष्ट है कि भगवान की हम पर कृपा है, लेकिन हम स्वयं अभी तक कृपापात्र नहीं बन पाए हैं। यह न्यूवता की पहचान हमेशा मन में रहे और उसे पूरा करने के लिए नित्य साधना करनी चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य का जन्म चौरासी लाख योनियों की बहुमूल्य धरोहर है। यानी मानव को चौरासी लाख योनियाँ पार करने पर मनुष्य का जन्म मिलता है। यह शास्त्रों ने सूचित किया है, यदि अपनी स्वयं की प्रगति इस योनी अवस्थाओं में से हमने की तो ही प्राप्त जनम को पूर्णत्व प्राप्त होता है। लेकिन यह पूर्णत्व का भी क्या अर्थ है?क्या केवल शास्त्रधार पर हदश्रद्धा यानी पूर्णत्व ऐसा मानना ठीक होगा। शास्त्र पर पूर्ण श्रद्धा शास्त्र का पूर्णत्व ऐसा मानना ठीक होगा। शास्त्र पर पूर्ण श्रद्धा शास्त्र का पूर्णत्व दर्शाती है लेकिन जिस मानव जन्म के कारण इस शास्त्र का उदय हुआ है वह मानव जन्म अभी अपूर्ण अवस्था में कार्य कर रहा है। यद्यपि जीवन का साध्य प्राप्त करना कठिन है, तो भी उसके लिए करने के साधन कठिन नहीं होने चाहिए। ठीक इसके विपरीत आज तक मार्गदर्शन पाकर, साध्य दुर्लभ बना और साधन भी कठिन हुआ। मानव जन्म में पाकर, साध्य दुर्लभ बना और साधन भी कठिन हुआ। मानव जन्म में साधन एक जीवन जीने की क्रिया है। लेकिन अगर वहीं क्रियाशील न हो तो इष्टध्येय प्राप्ति जीवन में एक अवरोध बन कर हमारे मार्ग में रहेगी। इसके लिए जो साधन हम अपनायेंगे उसकी सामग्री क्या है?यानी जिस साध्य के लिए हम साधन अपनायेंगे उस साध्य ध्येय में किन बातों का अंतर्भाव है, उसका बोध पहले होना चाहिए। नहीं तो साध ना का लक्ष्य यानी "क्रिया से कुछ जानना" यह अनुभव न होकर, केवल जीवन जीना इसके अलावा शेष अनुभव शून्य होता है। इसके कारण साधना करने पर भी निराशा ही हाथ लगती है। साधन लक्ष्य जानकर जब क्रियाशील होता है, तब उस साधना का धर्म केवल आशावादी बनाने का ही है। लेकिन अगर साधना क्रियाशील नहीं होगी तो निराशा यह जीवनधर्म बन जाता है। इस प्रकार के इस जीवनधर्म का अनुभव मनुष्य को पूर्णत्व प्राप्ति में अवरोध निर्माण करता है। लेकिन इसका दोष हम भगवान के या पूर्वकर्म के माथे पर लगाकर उससे अपने आप को मुक्त रखते हैं। इसका अर्थ जीवन के मूल कार्य के साथ हम एकरूप न होकर जीवन परिसर में जिसका अस्तित्व महसूस होता है, उसके साथ एकरुप होते हैं।

देव या देवत्व (देवतापन) मानवीय कल्पना नहीं है। वह वस्तुस्थिति है, इसका एहसास वस्तुनिष्ठ भक्त को ही हो सकता है। बहुत बार भक्ति करते समय, अपनी हुई प्रगति तो निश्चित निदान करने का माध्यम भक्तिमार्ग में नहीं है, "ऐसा कहा जाता है। लेकिन साधारणतया पचास प्रतिशत प्रगति प्रत्येक को हुई होती ही है।" इस कथन का उत्तर हम इस तरह दे सकते हैं कि "परमेश्वर तत्व निराकार है सुलभता से उसका लाभ हो, इसलिए तत्व ने आकार लिया।" इस आकार की भक्ति कर हमने उसे साकार किया। इस साकार परमेश्वर का अस्तित्व हममें है, तभी तो नित्याचरण में भगवान के प्रति आदर और भक्ति हम व्यक्त करते हैं। अब यह जो भक्त की अवस्था है, वह भक्तिमार्ग की पचास प्रतिशत प्रगति है, ऐसा हम मानेंगे तो गलत नहीं होगा। लेकिन भक्त की इसके आगे की प्रगति अधिक दृढ़ निष्ठा के बिना संभव नहीं है क्योंकि जो तत्व आप में साकार हुआ है, इस साकार हुए तत्व के कारकण जब आपको पुनः भक्ति करने का एहसास यह साकार हुआ तत्व करा देता है, तब जिस आकार को हम ने साकार किया है, उसी आकार को लक्ष्य रख कर हम भक्ति करते हैं। वास्तविक निराकार का आकार यह भगवान ने हमारे लिए धारण की हुई अवस्था और आकार को साकार की हुई भक्त की अवस्था, इनमें से भक्त को बारंबार इन्हीं अवस्थाओं का लाभ भक्ति के रुप में नहीं लेना चाहिए। आगे की प्रगति के लिए साकार हुए निराकार तत्व

को आकार में न देख कर निराकार में देखने का साधन प्राप्त करना चाहिए। इस अवस्था में भगवान का अस्तित्व सीमित रुप में अनुभव न होकर असीमित अनुभव होता है उदाहरणार्थ, जब तक नाव नदी के जलप्रवाह में विहार करती है तब नदी का आकार दो किनारों से महसूस होता है लेकिन वही नदी जब समुद्र के साथ मिल जाती है, तब हमें अपने सामने सब दूर पानी और आकाश अथाह नजर आते है।

भले ही पहली अवस्था में हम भगवान को लक्ष्य कर भक्ति करते है, तो भी साकारित ईश्वरी तत्व में हम अपने आपको समाहित नहीं पाते हैं। लेकिन भगवान तो भक्त में समाहित हुआ होता है, इसलिए साधक को ईश्वर का पूरा ज्ञान न होकर, अपने ही जीवन का यानी जन्मकर्म ऋणानुबंधों का एहसास होता है। इस एहसास के कारण कर्म के अनुसार करने का कर्त्तव्य और उसमें आने वाली अड़चनें इसका ही विचार बार–बार होकर, साकारित ईश्वरी तत्व के बारे में आवश्यक निष्ठा में वृद्धि नहीं होती। इसलिए पहली अवस्था में हुई प्रगति आगे स्थिर रुप में देह से सुलभता से कार्य नहीं कर सकती। पग–पग पर इस तरह का अनुभव आने से, देहधर्म का जो कार्य है और जिनका विचार वास्तविक कर्त्तव्य के रुप में करना चाहिए, वह न होकर देहधर्म यानी उपभोग की और अपने विचार अधिक साकार करने के लिए, साकारित ईश्वरी तत्व का हम उपयोग करते हैं। इस प्रकार के विचारों के कार्य को साकार करने के लिए जो ईश्वरी तत्व उपयोगी हुआ उसे ही ''कृपा आशीर्वाद'' समझ कर आगे की दैहिक प्रगति के लिए अपने आवश्यक प्रयास क्रियाशील नहीं रह पाते।

वास्तव में कृपा आशीर्वाद तथा उसका लाभ हमें मिला, तो कृपा आशीर्वाद में अपूर्णता कुछ भी नहीं होती है। कृपा आशीर्वाद यानी भगवान का पूरा अस्तित्व यदि ऐसा है तो भक्त करते समय कृपाशीर्वाद की बार–बार याचना क्यों करनी पड़ती है। इसका उत्तर यह है कि यद्यपि कृपा आशीर्वाद भगवान की पूरी अवस्था है, तो भी भगवान के बारे में अपूर्णावस्था हममें विद्यमान है, इसका एहसास हमेशा होना चाहिए। कृपा आशीर्वाद का पूर्णतत्व यानी भक्ति की प्रगति की दूसरी अवस्था है। दूसरी अवस्था में करने की भक्ति या कर्म यानी आकार से साकार हुआ निराकार ऐसा जो ईश्वरी तत्व है, उस तत्व के साथ एकरुप होना। अब इस निराकार तत्व से एकरुप होने पर, इस अवस्था में अपने स्वयं का एहसास यानी जन्मजन्मांतर के जन्मकर्म से अपना एहसास न होकर, निराकार यानी भगवान का ही एहसास होता है। यही कृपा आशीर्वाद है। नदी और उसका स्वरूप हमेशा नित्य रुप से नहीं मिलता। लेकिन सागर कभी भी सूखता नहीं, उसका लाभ लेने पर भी वह बरकरार रहता है। यही स्थिति निराकार अवस्था में अनुभव होती है।

ऐसी अवस्था में जन्मजन्मांतर के अस्तित्व का लय होता है। इसी अवस्था को ''मुक्ति'' कहा जा सकता है। इस अवस्था का गुणगान करते करते वेद भी थक चुके तो हमे इसका अधिकाधिक गहन विचार न कर, प्राप्त जन्म में भगवान के प्रति जो इष्ट कर्त्तव्य है, उसी का ही विचार करना श्रेयस्कर होगा।

दूसरी अवस्था ईश्वराधीन है और उसका लाभ मनुष्य को सुलभता से होता है, इसके लिए हमेशा भगवान का चिंतन करना आवश्यक है लेकिन पहली अवस्था मानव के अधीन होने से उसका विचार अधिक सूझबूझ से करना चाहिए। पहली अवस्था के जो दैहिक बंधन है, उसका कारण प्राप्त जन्म

चौरासी लाख योनी से होता है, ऐसा पढ़ने में और सुनने में आता है। तो क्या चौरासी लाख "शब्द का प्रयोग इस कथन में संख्यावाचक अर्थ में किया है? मानव जनम तक इस पंचभौतिक देह को मानव देह प्राप्त होने के लिए चौरासी स्थित्यंतरों से गुजरना पड़ता है, प्रत्येक स्थित्यंतर के अंतर्गत पूर्णता यानी एक योनी इस प्रकार अस्सी बार पंचतत्वों का स्थित्यंतर होता है और उसके पुनश्च मानव जन्म प्राप्त होता है यह मानव देह पंचकोशों से यानी अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय कोषों से परिपूर्ण है। प्रारंभ में अस्सी योनी से स्थित्यंतर होते समय प्रत्येक योनी में अन्नमय कोष प्रधान था, लेकिन अब मानव जन्म प्राप्त होने पर प्रत्येक योनी में जन्मा पंचभौतिक देह जब विकास की क्रिया से गुजरता है उस समय उसने इन पांचों कोषों का पूर्णत्व अपने में प्राप्त कर लिया। इसके कारण जिन योनियों का स्थित्यंतर हुआ वे अस्सी पेशियां आज मानव जन्म में इन पांचों कोषों से संबंधित है। ऐसी प्रत्येक कोष से जुड़ी हुई सोलह पेशियां यानी पंचमहाभूतत्व, पंचकर्मेंद्रिय, पंचज्ञानेंद्रिय और बुद्धि इन सबका जो कार्य है उसे ही मानवजीवन कहा जाता है। ऐसे इस मानव जीवन में विचार और विकार का हमेशा जो कार्य हो रहा है, इसका कारण है इन अस्सी अवस्थाओं के स्थित्यंतर के अनुसार कोषों की अपूर्णता। विकास, जो शरीरधर्म है, वह इन अस्सी अवस्थाओं में भी कार्य कर रहा था। इसलिए जीवन में आज भी विचार करने से पहले विकार का प्राबलय अधिक दिखाई देता है। विचार व्यक्ति करने की या साकार करने की अवस्था मानव जन्म में प्राप्त होने के कारण विचारों को दृढ़ रखना कठिन होता है। प्राप्त जन्म व्यतीत करते समय अन्नमय कोष, प्राणमय कोष और मनोमय कोष का धर्म विकार और मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष तथा आनंदमय कोष इनका धर्म "सुविचार" निर्माण करना है, ऐसा होते हुए भी सिर्फ "विचार करना" इतना ही कार्य मनोमय कोष करता है। इसलिए साधक अवस्था की जिन दो अवस्थाओं को हमने उपर किए निवेदन में विचार में किया, उसमें से पहली अवस्था मानव के आधीन है, ऐसा कहा, इसका अर्थ अस्सी योनियों का स्थित्यंतर के अनुसार शेष रहे अंशमात्र तत्व मानव रूप नहीं हुए हैं। इसलिए साकारित ईश्वर तत्व निराकार तत्व के साथ एकरुप होने में बाधा निर्माण करते है ऊपर उल्लेखित पचास प्रतिशत प्रगति हाोकर भी? शेष पचास प्रतिशत प्रगति में जो विलंब हो रहा हल उस कारण इस योनी अवस्था के शेष अंभमात्र तत्व अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोषों से एकरुप हुए हैं। इसलिए पचास प्रतिशत प्रगति होकर भी जिस ईश्वरी तत्व को हमने साकार किया है, उसका लाभ लेकर, अस्सी योनियों के जो अंशमांत्र तत्व है, उनको भी ईश्वर रुप करना चाहिए क्योंकि प्रत्येक मानव को जन्मप्राप्ति के बाद जो मुक्ति अवस्था कही गई है, वह केवल प्राप्त पंचभौतिक देह को न हाकर जो चौरासी योनी अवस्थाओं से हमने जन्म लिया अगर उस अंशमात्र तत्व को भी मुक्ति अवस्था प्राप्त करा दी तो ही दूसरी अवस्था में हम सुलभलता से प्रवेश कर सकेंगे।

देह माध्यम में आचार विचारों का आदान प्रदान होने से आचार विचारों को स्थिरता प्राप्त नहीं होती। इसलिए प्राप्त जीवन में सुख के बारे में भी असमाधान और अशांति रहती है। यानी हम सच्चे अर्थ में दुखी न होकर, पग–पग पर दुख का आभास यानी जीवन में खोखलापन निर्माण कर रहे हैं। यही खोखलापन हमारे जीवन की अशांति है। अब जिस देह के आचार–विचारों को स्थिरता देकर कार्य करने का मौका देने का साधन विचार में लेना है, उन्हीं विचारों के उपरान्त निश्चित किए गए मार्ग को

''गुरुमार्ग'' कहा गया है। लेकिन गुरुमार्ग के बारे में हमारी श्रद्धा यह है कि हमारे सामने स्थित जो व्यक्ति जिसे हम गुरु कहते है वहां हमारे गुरु हैं इसी जगह हम गुरुमार्ग की हमारी भूमिका गलत अपनाते है, इसका विचार करना चाहिए।

ऐसे गुरुमार्ग की खोज आज हम जीवन को सुख की दिशा प्राप्त कर देने के लिए कर रहे हैं। लेकिन गुरुमार्ग का लाभ होने पर हमें क्या सीख लेना आवश्यक है, इस पर विचार न कर, अन्यों का अनावश्यक आचरण और उनका अनुकरण ही गुरुमार्ग है और उसी प्रकार हम अपने जीवन की दिशा निश्चित करते हैं। परिणामतः जिस सुख शांति समाधान की खोज में हम निकले हैं; उनकी भी प्राप्ति नहीं होती और प्राप्त सुख का अनुभव भी नहीं ले सकते। वास्तव में गुरुमार्ग में एक ही प्रश्न अपने आपसे और गुरु से पूछना है कि ''प्राप्त सुख समाधान का अनुभव लेने के लिए किस प्रकार के आचार–विचार मेरे लिए पोषक होंगे? इन आचार विचारों की निश्चितता नित्य आदत डालकर प्राप्त कर, प्राप्त सुख में आनंद मानने को ही ''गुरुदीक्षा'' या ''अनुग्रह दीक्षा'' कहते हैं। इस प्रकार का इतना सुलभ गुरु शिष्यों का सुखसंवाद होते हुए भी जिनको गुरुपद की जिम्मेदारी की समझ नहीं है। ऐसे व्यक्तियों ने गुरुमार्ग को अधिक विकट बनाया है ऐसे लोगों ने ही समाज में देवधर्म का आडंबर रचाया है। अपने ऐहिक जीवन के नित्यकर्त्तव्य का ज्ञान करा देकर, देवधम्र का आवश्यक बोध करा देना गुरु का कर्त्तव्य है। लेकिन अगर गुरु को ही अपने कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं हेगा तो बाहरी तौर पर गुरुमार्ग का दिखावा ही परमार्थ प्राप्ति का मार्ग है ऐसा आभास निर्माण करना पड़ता है, वास्तव में यह सब दिखावा भावनाशून्य तथा कर्त्तव्यशून्य है क्योंकि भावना और उसे व्यक्त करने के लिए किए जाने वाले कर्त्तव्य अन्यों के अनुकरण से करने की जरूरत नहीं है। ये दोनों अवस्थाऐं मानव का सहजधर्म है। ऐसा यह सहजधर्म कार्य के लिए योग्य तरह से और योग्य जगह इस्तेमाल हो, इसी कर्त्तव्य को ''सत्कर्म'' कहते हैं। आरती, पारायण नामस्मरण, पूजा–अर्चना आदि जो हम करते है और जिसे हम पारमार्थिक कर्त्तव्य कहते है यह कर्त्तव्य पारमार्थिक न होकर, यह अपनी इच्छा न होते हुए भी दूसरे किसी की इच्छा की खातिर आत्मरोपित बंधन है। आचारविचारों का धर्म बंधन में न रहने का है। इसका अनुभव बार–बार हमें आता है। ऐसा होते हुए भगवान के बारे में जो पूज्य भावनाऐं है, उन्हें वैचारिक रुप में कार्य करने का मौका देना, यानी नित्याचरण है, ऐसा होने लगे यदि माना जाए, तो इस नित्याचरण को ऊपरी बंधन से क्या हम पारमार्थिक कर सकेंगे यह विचार प्रत्येक भक्त को करना आवश्यक है। भक्ति के भाव साकार होने की प्रक्रिया जिस देहमाध्यम से होती है, उसे ''भक्त'' कहा जाता है। लेकिन अगर उसी देह माध्यम से विचार या विकार साकार मार्ग होने लगे तो भक्ति का साक्षात्कार होना कितना दुर्लभ है, यह अनुभव होगा। इसलिए सुलभ आचार–विचारों का बोध लेकर उसके अनुसार अपना नित्याचरण करने को ही ''गुरुभक्ति'' कहते हैं। लेकिन आज हम इसकी आदत न डालकर, व्यक्तिपूजन का महत्व अधिक मानते हैं इसलिए जो आचार विचार गुरुरुप होना आवश्यक है, उसका मूल्य कम होता है। इस कारण स्वाभाविक रुप से अपने नित्य कर्त्तव्य की ओर दुर्लभ होकर, अपने परिवार के अन्य व्यक्तियों को उस संबंध में त्रासदी सहन करनी पड़ने से, इस मार्ग के प्रति अनादर निर्माण होता है।

प्राप्त जीवन में गुरुकृपा आशीर्वाद का हमें जो लाभ होता है, उसका हमारे जीवन के साथ क्या संबंध है और उस संबंध में हमारा क्या कर्त्तव्य है, यह जानना ही सच्चा "परमार्थ" है। प्राप्त जीवन जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म की धरोहर है, यह हमने अनेक बार हमारे पढ़ने में आने के कारण नित्य कर्त्तव्य करते समय ऋणानुबंध का बेतुका तत्वज्ञान हमारे दिमाग में अविचार निर्माण कर कर्त्तव्य की दिशा बदलने के लिए हमें विवश करता है। लेकिन एक बार जीवन में गुरुमाध्यम के ऋणानुबंध यानी मार्गदर्शन के अनुसार आचरण यह निश्चित हुआ कि अनेक जन्मजन्मांतर के ऋणानुबंध प्रतिकूल होकर भी अनुकूल कराये जा सकते हैं। इसी सुलभ कार्यपद्धति को "विमोचन" कहा जाता है। वास्तव में विमोचन कहने पर तीर्थयात्रा, देवधर्म, देहधर्म, व्रत आदि विषय हमारे सामने आते हैं। यह सब करना इसी का अर्थ सत्कर्म करने की सहज प्रवृत्ति निर्माण करना और उसके अनुसार आचरण करना ऐसा लगता जाता है। तो भी निश्चित रुप से इस मार्ग का अवलंब कर हम आवश्यक सुख प्राप्त नहीं कर सकते। इसके लिए जिस कृपा आशीर्वाद को प्राप्त करने का मार्गदर्शन हुआ है, उस मार्ग से अपने आचार विचार पोषक करना, यह अपना कर्त्तव्य अगर हम भूल गए तो कृपा आशीर्वाद का लाभ हानि इसका ज्ञान नहीं होता।

उपरोक्त विवेचन से सूज्ञ भक्तों की समझ में आया होगा कि पारमार्थिक मार्ग और पारमार्थिक आचरण देहिक मार्ग से भिन्न नहीं है। ऐहिक मार्ग या देहिक कर्त्तव्य पूर्वजन्म के अनेक कर्त्तव्यों की पूर्तता करने के लिए प्राप्त हुआ जीवन है। ऐसे यह ऐहिक जीवन के इष्ट कर्त्तव्यों की पूर्तता पूरे रुप से करना ही पारमार्थिक कर्त्तव्य है। ऐसा कर्त्तव्य पूरा करने के लिए हमारे आचार विचारों को निश्चितता और सुदृढ़ता प्राप्त हो इसलिए गुरुमार्ग का अवलंब करना अतिआवश्यक है। लेकिन ऐसे कर्त्तव्य की पहचान आपको यथोचित न होने से विभिन्न देवता, भिन्न–भिन्न पूजाअर्चना आदि को जीवन में शामिल कर, हम बहुमूल्य जीवन का अपव्यय करते है। वास्तव में ऐहिक कर्तव्य की पूर्तता करने के लिए जिस पारमार्थिक जीवन का या कृपा आशीर्वाद का लाभ हमें जोड़ना है, उसका साधन अत्यंत सुलभ है और उसे करने में ज्यादा समय खर्च नहीं हेागा। यह विचार अच्छी तरह ध्यान में रख कर ही आप सच्ची भावना अपने मन में निर्माण कर सकते हैं। अन्यथा अधिक समय तक अपनाया कर्त्तव्य भक्ति की दृष्टि से भावना शून्य होती है। इसलिए प्रत्येक ने दूसरों का अनुकरण कर, उस अनुकरण से भगवान की खोज न कर, कर रहे भक्ति की भावना में भगवान का बोध लेना चाहिए। इससे भगवान और भक्त भिन्न स्तर पर न होकर जो भक्तिभावनाऐं हैं, उनका पूर्ण साक्षात्कार ही भगवान है यह निश्चित है। अन्यथा भगवान के बारे में जो भावनाऐं है वे भावनाऐं भी तो ईश्वर शून्य है। इससे एक ही अनुमान हम निकाल सकते है कि भगवान के बारे में धर्म के बारे में, कर्म के बारे में, कुछ भी पढ़ा सुना तो भी जब तक हमारे आचार विचार भावना के साथ एकरुप नहीं हो सकते है, तब तक मन की एकाग्रता होना और मन तदाकार होना असंभव है। अगर यह सत्य है तो नित्य जीवन में अपनाए गए पारमार्थिक कर्त्तव्य खुद को दिशाहीन करने के लिए किस तरह जिम्मेदार है, इसका बोध होगा। भक्ति केवल ईश्वर प्रणीत ही होती है ऐसा नहीं जीवन में किसी भी विषय के बारे में लगाव और उसका निरंतर स्मरण भी भक्ति ही है यानी भावनात्मक आचार विचारों का पूर्णत्व जिस क्रियात्मक भावना से होता है उसे ही "भक्ति" कहा जाता है। अन्यथा वह खुद पर और दूसरों पर लादी गई सख्ती होगी।

जिस भक्तिमार्ग की ओर हम आस्थापूर्वक और सद्भावना से देखते हैं, वह भी तो क्या है? या जिसके संबंध में हमें पूज्य भावना है, उसके लिए देह द्वारा कुछ कर्म करना ही क्या "भक्तिमार्ग" है? भक्तिमार्ग देह धर्म का ही एक हिस्सा है। किन्तु उसके बारे में देह को स्वाभाविक रुप में आदत न होने से भक्तिमार्ग की भूख का ज्ञान देह को नहीं होता है। वास्तव में भक्ति क्रिया का भाव भक्ति में न होकर देह में है। देह के यह भाव, भावनात्मक क्रिया द्वारा जब व्यक्त होते हैं तब भक्ति का पूर्णत्व साकार होता है! यह क्रिया प्राप्त होने के लिए लंबे अर्से तक भक्ति करनी पड़ी तो भी अपनी भक्तिमार्ग की श्रद्धा ढ़लनी नहीं चाहिए। भक्तिमार्ग का पूर्णत्व प्राप्त होने के लिए भक्ति क्रिया में और देह में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती और अगर बाधा आती है तो वह भक्तिमार्ग के प्रति अपने आस पास देखने और सुनने में आने वाली अफवाह या असत्य बातें हैं। उदाहरणार्थ अनेक लोग चमत्कार या सिद्धि यह भक्तिमार्ग की पूर्णावस्था या श्रेष्ठपद मानते हैं। भक्तिमार्ग चमत्कार पर आधारित नहीं हैं। लेकिन यह हमारे ध्यान में नहीं आता। क्योंकि हमारा मन और विचार भक्तिमार्ग के साथ एकरुप नहीं हुए होते है। इसलिए भक्ति द्वारा साकार होने वाला भगवान का अस्तित्व हमें दिखाई नहीं देता। बाहरी दुनिया में चमत्कार, संचार या अन्य गूढ़विद्याओं के प्रभाव का हमें अनुभव होता है। उसमें से किसी एकाध अवस्था को अपने में निर्माण कर, दूसरों से हम श्रेष्ठ हैं ऐसा आभास निर्माण नहीं करना चाहिए। इससे अच्छा है कि "विद्या विनयेन शोभते" इस शुभवचन के अनुसार अपने आचार–विचार रखकर लोकप्रिय होना चाहिए। इसी में सच्चा आनंद हमें मिल सकेगा अज्ञानरुपी जो अंधकार है वह दूर होने पर चैतन्यरुपी प्रकाश दिखाई देगा। यह समय आने तक निष्ठा और संयम रखना चाहिए। यही गुरुमार्ग का साधन है। ऐसे समय यदि अधिक आशंकाऐं होंगी भी तो वह इस मार्ग का कच्चापन समझा जाता है। भक्ति विषय के साथ विचार एकरुप होने पर कच्चापन नहीं रहेगा। फल कच्चा होने से खट्टा लगता है लेकिन पकने पर वहीं खट्टापन मिठास में बदल जाता है। फल पकने पर वह पेड़ से अलग हो जाता है। फल पकने पर पेड़ उसका उपभोग नहीं लेता है। इसी प्रकार अपने में जो आनंद है वह दूसरों को भी मिले यह भावना ही "स्वानंद" है।

आज के संसार के प्रत्येक मनुष्य को सुख, शांति, समाधान आदि का अभाव महसूस हो रहा है। जीवन के ऐसे अमोल मूल्य प्राप्त करने के लिए पारिवारिक स्तर से अंतरराष्ट्रीय स्तर तक सहयोग के निरंतर प्रयास प्रत्येक कर रहा है। तो भी अनुभव यह बताता है कि जीवन की यह अहम समस्या सुलभता से हल नहीं हुई है। जिसकी मानवीय जीवन को आज बहुत आवश्यकता है? उसकी नए से खोज लेने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही नहीं है तो उसकी आवश्यकता नित्य रुप से तथा उसका मूल्य भी ज्यादा नहीं है। ऐसा होने पर भी सत्य वस्तुस्थिति का बोध अन्य मार्ग से अनुभव करने की प्रवृत्ति दिन–ब–दिन बढ़ रही है। यह जीवनांतर्गत संघर्ष और समाज में इसका संघर्ष इनके बीच एक प्रतिस्पर्धा के रुप में खेला जा रहा है, यह कहना गलत न होगा।

।। शुभम् भवतु।।

सेवक।